International Journal of Scientific Research in Science and Technology
© 2021 IJSRST | Volume 8 | Issue 4 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Education

भारत में मध्यम वर्ग का उदय एवं विकास : विशेषकर बिहार के संदर्भ में।

आरती कुमारी
शोद्यार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

मध्यम वर्ग, विश्व फलक पर औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप जनित पूँजीवाद के प्रतिफल के रूप में सामने आया था पर भारतीय संदर्भ में इसकी उल्टी कहानी है। अंग्रेजी राज में औद्योगिकीकरण का दौर शुरू होता है, परम्परागत उद्योग उजड़ कर लोग बेरोजगार और भुखमरी के दौर में गुजरने लगे थे। ऐसी विडम्बनापूर्ण स्थिति में मध्यम वर्ग का उदय विकास की एक स्थानीय परिभाषा और सिद्धांत गढ़ता प्रतीत होता है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों में मध्यम वर्ग का उद्‌भव होता है। जाति, भूमिधारी वर्गों, वाणिज्य, उद्योग और शिक्षित लोगों के बीच में एक मध्यम वर्ग का उदय होता है। यह मध्यम वर्ग, सामाजिक विषमताओं के गर्त में सतह से थोड़ा ऊपर उठा जान पड़ता है, फिर भी यह किस स्तर तक उठा, यह आज भी शोध का विषय है। मध्यम वर्ग केन्द्रित लेखन स्वतंत्र भारत में ही शुरू हो सका। स्वतांन्र्योत्तर भारत में इस विषय पर गहन विचार–विमर्श प्रारंभ हुआ है। स्वतंत्रता पूर्व इतिहास लेखन का न तो यह केन्द्रबिन्दु था और न ही इस दिशा में कोई सार्थक पहल देखने को मिलता है। 1936 में डॉ0 बी. आर. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक एनीहिलेशन ऑफ कास्टःस्पीड में सामाजिक हलचल के बीच जातियाँ पर अपना विचार व्यक्त किया है। राष्ट्रीय आंदोलन की इस दौर में जातियों के नाश की कामना के बीच से मध्यम वर्ग झांक रहा था। मध्यम वर्ग की हलचल समाज में सुनाई देने लगी थी। सर्वप्रथम स्वतांन्र्योत्तर भारत में पहली बार बी. बी. मिश्रा ने द इंडियन मिडिल क्लासेज पुस्तक के माध्यम से आधुनिक भारत में समाज के विभिन्न वर्गों में उदित हो रहे मध्यम वर्ग को चिन्हित करने का गंभीर प्रयास अपनी पुस्तक में किया है।

भारत में मध्यम वर्ग का उद्‌भव और विकास प्रारंभ से ही महाप्रांत कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के नगरों में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के वाणिज्य और व्यापारिक गतिविधियाँ तथा राजनीतिक सूझ–बूझ और योगदान का ऋणी था। महानगरों से खाद–पानी लेकर समाज का यह अंश एक नये वर्ग का स्वरूप धारण कर रहा था। मध्यम वर्ग के रूप में विकसित इस नवोदित वर्ग को ब्रिटिश सरकार और कम्पनी ने बहुविध पल्लवित और पुष्पत किया। कलकत्ता में सर्वप्रथम लोग पश्चिमी विचारों, आदर्शों तथा संस्थाओं से प्रभावित हुए। यह प्रक्रिया प्रांतों तथा जिलों तक पहुँची और सरकारी मुलाजिम के रूप में सिविल कर्मचारियों, कम्पनी के निवासी और वाणिज्य और व्यापार में संलग्न लोग, जो कम्पनी के दरबार और कारखानों से जुड़े हुए थे, के द्वारा नीचे तक पहुँची।[1] इनके साथ–साथ ईसाई मिशनरी, मुक्त बनिया और यूरोपियन सौदागर, यूरोपीय बगान मालिक द्वारा पश्चिमी उदारवादी विचार एवं आदर्श बंगाल तक

पहुँचा दिया गया। कॉलेज और स्कूल भी इसके माध्यम बने। सत्ता और सत्ता संपोषित ये केन्द्र मध्यम वर्ग के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। यह मध्यम वर्ग रूपये, आर्थिक व्यवस्था और पश्चिमी शिक्षा के आधार पर विकसित हुए। ब्रिटिश शासन काल में व्यापार और वाणिघ्ज्य, उद्योग, भूमि और शिक्षा के क्षेत्र में मध्यम वर्ग का उदय होने लगा। बंगाल और बिहार पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की राजनीतिक सर्वोच्चता स्थापित हो जाने के बाद अंग्रेज बिहार के वाणिज्य और व्यापार पर ध्यान देने लगे। बिहार के आर्थिक महत्व ने उनका ध्यान इस तरफ आकृष्ट किया। बिहार में सूती वस्त्र, सिल्क की वस्तुयें, अफीम, चीनी और सबसे अधिक महत्वपूर्ण शोरा के व्यापार का केन्द्र था।[2] शोरा का महत्व काफी बढ़ गया था क्योंकि बारूद के निर्माण और उत्पादन का यह एक प्रमुख अवयव था। आरंभ में कम्पनी के लोगों का ध्यान भारत में उत्पादित पदार्थों को खरीदने पर केन्द्रित था। सूती वस्त्र और सिल्क वस्त्र का उद्योग भारत के इस प्रदेश में घरेलू उद्योग के रूप में विकसित था। बुनकर अपने उत्पादित वस्त्रों का बाजार यदा–कदा किया करते थे। यह कार्य सौदागर द्वारा किया जाता था जो कभी–कभी इन लोगों को कच्चा पदार्थ खरीदने के लिए पैसा दे दिया करता था। इन सौदागरों द्वारा वस्तुओं के उत्पादन के लिए आदेश भी दिये जाते थे। इन आदेशों के साथ–साथ अग्रिम राशि भी दे दिया जाता था। कालांतर में कम्पनी इन वस्तुओं को अपने द्वारा नियुक्त गुमाश्तों के माध्यम से खरीद लिया करती थी।

यूरोप की अनेक व्यापारिक कम्पनियों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बिहार में उत्पादित शोरा के आधार ही था। 1720 में अथक प्रयास के बाद इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा 1757–58 ई0 में एक फैक्ट्री पटना में स्थापित की गई।[3] उत्तर बिहार का चम्पारण जिला जो सालीफरेस जमीन के लिए प्रसिद्ध था, अंग्रेजों के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हुआ। अंग्रेजों के द्वारा शोरा का उद्योग यहाँ पर आरंभ किया गया। कुछ ही दिनों में चम्पारण का शोरा का एक विशिष्ट उत्पादक क्षेत्र बन गया। इस प्रकार से मुजफ्फरपुर शोरा उत्पादन का दूसरा महत्वपूर्ण स्थान बन गया। शोरा उद्योग के विकास के लिए अंग्रेजों ने 1876–77 तक लगभग 16486 लाइसेंस प्रदान किया, जिनको उत्पादन का अधिकार प्राप्त हुआ।[4] इस प्रकार के उद्योग के विकास के परिणामस्वरूप शोर के उद्योग में एक मध्यम वर्गीय व्यापारिक वर्ग बन गया। यह वर्ग अंग्रेजों के इस व्यापार में सहयोगी के रूप में उदित हुआ क्योंकि अंग्रेज उत्पादित शोरे के व्यापार और उधोग के विकास के लिए भारतीय एजेंटों का सहयोग लेते थे। यह व्यापारिक वर्ग अंग्रेजों की अग्रिम राशि तथा उनकी मांग उत्पादकों तक पहुंचाता था तथा इसे पुनः एकत्रित कर अंग्रेजों तक पहुंचा देता था। यह प्रक्रिया भारत में और विशेषकर बिहार में एक मध्यम वर्ग को जन्म दिया जो कालांतर में व्यापारिक मध्यम वर्ग कहलाया।

बिहार में औद्योगिक मध्यम वर्ग का उदय उद्योगों में लगे लोगों की गरीबी और सामाजिक सहभागिता में कार्यों की अधिकता के कारण उदासीन रहने के परिणामस्वरूप धीमी गति से हो पाया। वस्त्र उद्योग जो इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति कर अग्रदूत बन गया था लेकिन भारत के लिए उतना लाभदायी नहीं था। यह सही है कि विश्व के बाजार में भारत के सूती, मलमल और सिल्क के वस्त्रों को सर्वप्रिय और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था परंतु इस उद्योग में लगे जो वस्त्र बुनने का कार्य करते थे बहुत ही कम लाभ पर माल बेच दिया करते थे अथवा महाजनों के आदेशानुसार आपूर्ति करते जिन्हें मात्र मजदूरी मिल पाती थी। वे मात्र दो या तीन रूपये प्रतिमाह वेतन पाने वाले

मजदूर थे और एक व्यक्ति जो 48 रूपये प्रति वर्ष की आय वाला होता था, वह मध्यम वर्ग का माना जाता था। वास्तव में औद्योगिक पेशा प्रतिष्ठित पेशा का स्थान ग्रहण नहीं कर पाया था। आर्थिक और सामाजिक कारकों ने यूरोपीय ढ़ंग से भारत में औद्योगिक मध्यम वर्ग के विकास में बाधा उत्पन्न किया।[5] भारत का मध्यम वर्ग एवं उसके साथ–साथ बिहार का मध्यम वर्ग एक आपूर्तिकर्त्ता मध्यम वर्ग के रूप में कार्य करना शुरू किया। यह वर्ग निर्देशन और निरीक्षण का कार्य नहीं करता था।[6]

बिहार में शोरे के उत्पादन के उद्योग भी व्यक्तिगत और लघु उद्योग के रूप में प्रचलित थे। अफीम का भी उद्योग थोड़ी सी सरकारी नियंत्रण को छोड़कर व्यक्तिगत ही था। यूरोपीय दक्षता और पूंजी ने नील और अफीम की उत्कृष्टता और परिमाण में वृद्धि की। बिहार में नील की मात्रा में उत्पादन को जो कार्य आरंभ हुआ उसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में लिपिक और निरीक्षण करने वाले लोगों का समूह खड़ा कर दिया। इस प्रकार के लिपिकों और निरीक्षकों का समूह शोरा और अफीम के उधोग के परिणामस्वरूप विकसित हो गया। व्यक्तिगत यूरोपीय पूंजी बगान लगाने, नील, जूट और चीनी उद्योगों में निवेशित हुई थी। नील का उद्योग उन्नीसवीं शताब्दी के आधी सदी का समृद्ध रहा। 1885 में जर्मनी द्वारा कृत्रिम नील बनाने में जब सफलता मिल गई तो भारतीय नील का बाजार बर्बाद हो गया। इसके फलस्वरूप चम्पारण और मुजफ्फरपुर में नील का उत्पादन 90 प्रतिशत कम हो गया।[7] जब 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध आरंभ हो गया तो विश्व दो गुटों में बँट गया। शत्रुतापूर्ण वातावरण के कारण जर्मनी के कृत्रिम नील उद्योग का बाजार कम हो गया और भारतीय नील की मांग पुनजीर्वित हो गई। इसके परिणामस्वरूप नील की खेती और नील के कारखाने पुनः आरंभ हो गये।

ब्रिटिश शासक मुगलकालीन भूमि व्यवस्था तथा कृषि आधारित आर्थिक व्यवस्था को समाप्त करने के दिन दो मार्ग अपनाए। सबसे पहले उनलोगों ने एक सशक्त राजनीतिक सत्ता की स्थापना की। यह सत्ता न्यायिक और प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति अपने अनुसार की। अतएव मुगलकालीन जमींदारों का सहयोग राजनीतिक सत्ता और प्रशासनिक व्यवस्था के लिए अपेक्षित नहीं रह गया। इस प्रकार जमींदारों का यह अधिकार अंग्रेजों ने समाप्त कर लोक उत्तरदायित्व समाप्त कर दिया। अब इनका कार्य मात्र अनुपालनकर्त्ता और पारदर्शक का रह गया। दूसरे स्थान पर उनलोगों ने भू–स्वामियों को ब्रिटिश सरकार द्वारा मान्यता प्रदान करने की परम्परा आरंभ की अर्थात् अब वे ही लोग भू–स्वामी या जमींदार माने जायेंगे जिन्हें ब्रिटिश सरकार मान्यता प्रदान करेगी। इस प्रथा में अंग्रेजों ने एक निश्चित समय निर्धारित कर दिया। यह दूसरी प्रथा के प्रचलन के बाद अंग्रेजों ने स्वामीभक्त बड़े, मध्यम और छोटे स्तर के भू–स्वामियों, कृषि जमींदारों, छोटे जमींदारों और कृषक स्वामियों की संख्या खड़ी कर दी। इस प्रथा ने कालांतर में भारतीय सामाजिक व्यवस्था में मध्यम वर्गीय भू–स्वामियों के अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त किया।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में मध्यम वर्ग के लोग अधिक संख्या में थे एवं उनकी संख्या में वृद्धि हो रही थी। बिहार के तत्कालीन समाज में मध्यम वर्ग के व्यक्तियों की संख्या शहरों एवं ग्रामों दोनों में ही बढ़ रही थी। ग्रामीण क्षेत्रों के मध्यम वर्ग के अंतर्गत कृषक, पंडे, पुरोहित, पुजारी, छोटे–मोटे कर्मचारी को शामिल किया जा सकता है। विकास के क्षेत्र में इनकी भूमिका न के बराबर थी। इसके विपरीत बिहार के शहरी क्षेत्रों में मध्यम वर्ग के अंतर्गत

कम्पनी के कर्मचारी, व्यापारी, डॉक्टर, वकील एवं अध्यापक आदि लोगों को शामिल किया जा सकता है। ग्रामीण मध्यम वर्ग की तुलना में शहरी मध्यम वर्ग का जीवन अधिक असुविधापूर्ण व तनावपूर्ण होता था। तत्कालीन समय में समाज का कोई भी वर्ग समाज के अन्य वर्गों से अछूता नहीं रहता था। प्रत्येक का एक–दूसरे के साथ सम्पर्क होता था। इस दृष्टिकोण से मध्यम वर्ग अलग–अलग वर्ग नहीं था। इसका तत्कालीन समाज के अन्य दो वर्गों से, उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग से घनिष्ठ संबंध रहता था। लेकिन समाज के अन्यान्य वर्गों से यह कोई घनिष्ठ संबंध नहीं था। निम्न वर्ग और उच्च वर्ग के बीच में मध्यम वर्ग के लोग होते थे। मध्यम वर्ग का स्थान समाज के बीचो–बीच पड़ता था। इसलिए, वह सामाजिक धरातल पर अपनी विशेष स्थिति के कारण उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग से घनिष्ठ भाव से संबंधित रहता था। बिहार के तत्कालीन समाज की गतिविधियों को मध्यम वर्ग के लोग प्रभावशाली ढ़ंग से प्रभावित एवं प्रेरित करते थे। बिहार के सामाजिक संरचना में विभिन्न प्रकार के मध्यमवर्गीय लोग अपनी–अपनी पहचान बनाने की दिशा में प्रयत्नशील थे। तत्कालीन समाज में जो सामाजिक परिवेश था, उसमें रहते हुए भी बिहार के मध्यम वर्ग के लोगों ने राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न कार्यक्रमों में सराहनीय भूमिका निभाई।

संदर्भ सूची :–

1. आर. आर. दिवाकर, बिहार थ्रू द एजेज, पटना, पृष्ठ–578।
2. वही पृष्ठ 182।
3. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, खण्ड–तीन, पृष्ठ–343।
4. वही।
5. डॉ. बी. बी. मिश्रा, द इंडियन मिडिल क्लासेज, पृष्ठ–106।
6. वही पृष्ठ–112।
7. आर.आर. दिवाकर, पूर्वोक्त पृष्ठ 578।